THE RESEARCH DIALOGUE
An Online Quarterly Multi-Disciplinary
Peer-Reviewed / Refereed Research Journal
ISSN: 2583-438X
© The Research Dialogue | Volume-05 | Issue-02 | July-2026
Available online at: https://theresearchdialogue.com/
DOI : https://doi.org/10.64880/theresearchdialogue.v5i2.13

अद्वैत वेदान्त में नैतिक विमर्श: एक अध्ययन

डा0 श्रीप्रकाश तिवारी
असि0 प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र, काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही।
Mail:- sptiwari632@gmail.com

सार (Abstract)

अद्वैत वेदान्त भारतीय दार्शनिक परम्परा की एक अत्यन्त प्रभावशाली एवं विकसित विचारधारा है, जिसका व्यवस्थित प्रतिपादन आदि शंकराचार्य ने किया। सामान्यतः यह धारणा व्यक्त की जाती है कि अद्वैत वेदान्त का मुख्य उद्देश्य ब्रह्म–आत्मा की अभिन्नता का प्रतिपादन तथा मोक्ष की प्राप्ति है, इसलिए इसमें नैतिकता का स्वतंत्र स्थान नहीं है। किन्तु यह धारणा एकांगी है। वास्तव में अद्वैत वेदान्त में नैतिकता को आत्मशुद्धि, चित्तशुद्धि तथा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए अनिवार्य साधन माना गया है। सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा, अपरिग्रह, आत्मसंयम तथा निष्काम कर्म जैसे नैतिक मूल्य ज्ञान की प्राप्ति के लिए आवश्यक आध्यात्मिक अनुशासन का निर्माण करते हैं। अद्वैत वेदान्त के अनुसार जब तक मनुष्य राग, द्वेष, अहंकार, लोभ तथा अविद्या से मुक्त नहीं होता, तब तक वह आत्मज्ञान का अधिकारी नहीं बन सकता। इस दृष्टि से नैतिकता केवल सामाजिक व्यवस्था का साधन न होकर आत्मानुभूति की पूर्वपीठिका है।

प्रस्तुत शोध–पत्र में अद्वैत वेदान्त की नैतिक अवधारणा का दार्शनिक विश्लेषण किया गया है। इसमें उपनिषदों, भगवद्गीता, ब्रह्मसूत्र तथा शंकरभाष्य के आलोक में नैतिक मूल्यों का विवेचन करते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि अद्वैत वेदान्त का नैतिक चिंतन व्यक्ति, समाज तथा विश्वमानवता के लिए आज भी प्रासंगिक है। साथ ही समकालीन नैतिक संकटोंकृजैसे उपभोक्तावाद, पर्यावरणीय असंतुलन, सामाजिक असमानता तथा मानवीय संवेदनहीनता— के संदर्भ में अद्वैत वेदान्त की उपयोगिता का आलोचनात्मक परीक्षण भी किया गया है।

प्रमुख शब्द: अद्वैत वेदान्त, नैतिकता, ब्रह्म, आत्मा, शंकराचार्य, मोक्ष, चित्तशुद्धि, निष्काम कर्म।

1. भूमिका

भारतीय दर्शन की समृद्ध परम्परा में अद्वैत वेदान्त का स्थान अत्यन्त विशिष्ट है। यह दर्शन केवल आध्यात्मिक मुक्ति का सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि मनुष्य के नैतिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास की समन्वित दृष्टि भी प्रदान करता है। अद्वैत वेदान्त का मूल प्रतिपादन है कि ब्रह्म ही परम सत्य है तथा जीव और ब्रह्म में किसी प्रकार का वास्तविक भेद नहीं है। जीव की सीमितता, दुःख तथा बन्धन का कारण अविद्या है। जब ज्ञान के माध्यम से अविद्या का नाश होता है तब आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार करती है और मोक्ष की प्राप्ति होती है।[1]

यद्यपि अद्वैत वेदान्त का अंतिम लक्ष्य ब्रह्मज्ञान है, तथापि यह लक्ष्य बिना नैतिक अनुशासन के प्राप्त नहीं हो सकता। शंकराचार्य ने स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है कि आत्मज्ञान के अधिकारी वही व्यक्ति हो सकता है जिसने अपने जीवन

में विवेक, वैराग्य, शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा तथा समाधि जैसे साधनों का विकास किया हो। इन साधनों का स्वरूप मूलतः नैतिक एवं आध्यात्मिक अनुशासन से सम्बद्ध है।[2]

अद्वैत वेदान्त की नैतिकता का आधार किसी बाह्य दैवी आदेश या दण्ड–व्यवस्था पर नहीं, बल्कि आत्मा की सार्वभौमिक एकता की अनुभूति पर आधारित है। जब मनुष्य प्रत्येक प्राणी में उसी आत्मा का दर्शन करता है जो उसके भीतर विद्यमान है, तब अहिंसा, करुणा, मैत्री और परोपकार स्वतः उसके जीवन का अंग बन जाते हैं। इस प्रकार अद्वैत वेदान्त में नैतिकता बाह्य नियमों का पालन मात्र नहीं, बल्कि आत्मबोध की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है।

समकालीन युग में वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद, पर्यावरणीय संकट, सामाजिक विषमता तथा नैतिक मूल्यों के ह्रास ने मानव जीवन को अनेक चुनौतियों के सामने खड़ा कर दिया है। ऐसे समय में अद्वैत वेदान्त की नैतिक दृष्टि मनुष्य को आत्मकेन्द्रित जीवन से ऊपर उठाकर सार्वभौमिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित करने की प्रेरणा देती है। यही कारण है कि अद्वैत वेदान्त का नैतिक चिंतन केवल दार्शनिक अध्ययन का विषय नहीं, बल्कि वर्तमान वैश्विक समाज के लिए भी अत्यन्त प्रासंगिक है।

इस शोध–पत्र का उद्देश्य अद्वैत वेदान्त की नैतिक अवधारणाओं का दार्शनिक विश्लेषण करते हुए यह प्रतिपादित करना है कि नैतिकता और आध्यात्मिकता परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि एक–दूसरे की पूरक हैं। साथ ही यह भी स्पष्ट किया जाएगा कि अद्वैत वेदान्त की नैतिक दृष्टि आधुनिक नैतिक विमर्श को किस प्रकार नई दिशा प्रदान कर सकती है।

. 2. अद्वैत वेदान्त का दार्शनिक आधार

अद्वैत वेदान्त भारतीय दर्शन की उत्तरमीमांसा परम्परा का वह सुव्यवस्थित स्वरूप है, जिसकी आधारभूमि उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा भगवद्गीता में निहित है। इन तीनों ग्रन्थों को प्रस्थानत्रयी कहा जाता है और इन्हीं के आधार पर आदि शंकराचार्य ने अद्वैत वेदान्त का दार्शनिक प्रतिपादन किया। अद्वैत का मूल प्रतिपाद्य यह है कि 'ब्रह्म ही एकमात्र परम सत्य है, जगत् व्यावहारिक स्तर पर सत्य प्रतीत होते हुए भी परमार्थतः मिथ्या है तथा जीव और ब्रह्म में कोई वास्तविक भेद नहीं है।'[3] उपनिषदों में ब्रह्म को समस्त अस्तित्व का मूल कारण, सर्वव्यापक तथा निरपेक्ष सत्य कहा गया है। छान्दोग्योपनिषद् का प्रसिद्ध महावाक्य—"तत्त्वमसि"—यह प्रतिपादित करता है कि जीव का वास्तविक स्वरूप वही ब्रह्म है।[4] इसी प्रकार बृहदारण्यकोपनिषद् का महावाक्य—"अहं ब्रह्मास्मि"—आत्मा और ब्रह्म की अभिन्नता की उद्घोषणा करता है।[5] इन महावाक्यों का उद्देश्य किसी बाह्य सत्ता की उपासना नहीं, बल्कि आत्मस्वरूप के प्रत्यक्ष ज्ञान की ओर साधक का मार्गदर्शन करना है।

शंकराचार्य के अनुसार ब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म है—अर्थात् वह नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त और अनन्त स्वरूप है।[6] ब्रह्म में किसी प्रकार का परिवर्तन, भेद या सीमितता नहीं है। संसार में जो विविधता दिखाई देती है, वह ब्रह्म की वास्तविक विविधता नहीं, बल्कि अविद्या अथवा माया के कारण उत्पन्न अनुभूति है। इसलिए अद्वैत वेदान्त का लक्ष्य बाह्य जगत् का निषेध करना नहीं, बल्कि उसके परमार्थिक स्वरूप का विवेचन करना है।

अद्वैत वेदान्त में माया की अवधारणा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। माया न तो पूर्णतः सत्य है और न पूर्णतः असत्य; वह अनिर्वचनीय है। माया के कारण ही एक अद्वितीय ब्रह्म अनेक नाम–रूपों के रूप में प्रतीत होता है। शंकराचार्य प्रसिद्ध उदाहरण देते हैं कि जैसे अंधकार में रस्सी को सर्प समझ लिया जाता है, उसी प्रकार अविद्या के कारण ब्रह्म में जगत् का अध्यास हो जाता है।[7] जब ज्ञान का प्रकाश होता है, तब यह भ्रम दूर हो जाता है। यह उदाहरण केवल ज्ञानमीमांसीय

सिद्धान्त नहीं, बल्कि नैतिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि लोभ, अहंकार, द्वेष और हिंसा जैसे सभी दोष इसी अविद्या से उत्पन्न होते हैं।

अद्वैत वेदान्त का यह दार्शनिक आधार उसके नैतिक चिंतन को भी दिशा प्रदान करता है। यदि प्रत्येक जीव में एक ही आत्मा विद्यमान है, तो किसी दूसरे के प्रति हिंसा, शोषण अथवा घृणा का कोई औचित्य नहीं रह जाता। दूसरे के प्रति किया गया अन्याय अन्ततः उसी सार्वभौमिक आत्मा के प्रति अन्याय है जिसका अंश स्वयं मनुष्य भी है। इस प्रकार अद्वैत में नैतिकता किसी बाहरी सामाजिक अनुशासन का परिणाम नहीं, बल्कि अस्तित्व की एकात्मकता की दार्शनिक अनुभूति का स्वाभाविक निष्कर्ष है।

यही कारण है कि अद्वैत वेदान्त में साधनचतुष्टय को ज्ञान–प्राप्ति की अनिवार्य शर्त माना गया है। ये हैं—(1) नित्यानित्यवस्तु–विवेक, (2) इहामुत्रफलभोगविराग, (3) शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान रूपी षट्सम्पत्ति तथा (4) मुमुक्षुत्व।[8] इनमें शम (मन का निग्रह), दम (इन्द्रिय–संयम), तितिक्षा (सहनशीलता), श्रद्धा (शास्त्र एवं गुरु में विश्वास) तथा समाधान (चित्त की एकाग्रता) स्पष्टतः नैतिक एवं आध्यात्मिक अनुशासन के अंग हैं। इससे सिद्ध होता है कि शंकराचार्य ने ज्ञान और नैतिकता को परस्पर पूरक माना है।

भगवद्गीता भी अद्वैत की नैतिक पृष्ठभूमि को सुदृढ करती है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं—

"विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।

शुनि चौव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥"[9]

अर्थात् सच्चा ज्ञानी विद्वान् ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते तथा चाण्डाल में भी समान आत्मा का दर्शन करता है। यह समदृष्टि अद्वैत वेदान्त की नैतिक चेतना का मूलाधार है। समदृष्टि से ही करुणा, सहिष्णुता, समानता और सामाजिक न्याय की भावना विकसित होती है।

इसी प्रकार ईशावास्योपनिषद् का उद्घोष—

'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।'[10]

यह प्रतिपादित करता है कि सम्पूर्ण जगत् ईश्वर या ब्रह्म से आवृत है। यदि प्रत्येक वस्तु में दिव्यता का निवास है, तो प्रकृति का संरक्षण, संसाधनों का संयमित उपयोग तथा समस्त प्राणियों के प्रति संवेदनशील व्यवहार नैतिक कर्तव्य बन जाते हैं। इस प्रकार अद्वैत वेदान्त की दार्शनिक दृष्टि आधुनिक पर्यावरणीय नैतिकता के लिए भी महत्वपूर्ण आधार प्रस्तुत करती है।

कुछ विद्वानों ने यह आपत्ति की है कि यदि जगत् मिथ्या है, तो नैतिकता का भी कोई वास्तविक आधार नहीं बचता। किन्तु यह आपत्ति शंकराचार्य की सत्ता–त्रय की अवधारणा को समझे बिना की जाती है। अद्वैत वेदान्त परमार्थिक और व्यावहारिक—दो स्तरों पर सत्य की चर्चा करता है। परमार्थिक स्तर पर केवल ब्रह्म सत्य है, किन्तु व्यावहारिक स्तर पर जगत्, समाज, धर्म, कर्तव्य तथा नैतिक आचरण का पूर्ण महत्त्व स्वीकार किया जाता है। जब तक आत्मज्ञान नहीं होता, तब तक धर्म, नैतिकता और कर्तव्य का पालन अनिवार्य है। वस्तुतः इन्हीं के माध्यम से चित्तशुद्धि होती है और मनुष्य ब्रह्मज्ञान का अधिकारी बनता है।[11]

अतः यह स्पष्ट है कि अद्वैत वेदान्त का दार्शनिक आधार केवल आध्यात्मिक सिद्धान्त नहीं है, बल्कि वह एक सुसंगत नैतिक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत करता है। ब्रह्म की अद्वैत सत्ता, आत्मा की सार्वभौमिकता, माया का सिद्धान्त, साधनचतुष्टय और समदृष्टि—ये सभी मिलकर ऐसे नैतिक जीवन की स्थापना करते हैं जो आत्मकल्याण के साथ–साथ लोककल्याण

का भी आधार बनता है। इसलिए अद्वैत वेदान्त में दर्शन और नैतिकता एक–दूसरे से पृथक न होकर एक ही आध्यात्मिक सत्य के दो परस्पर पूरक आयाम हैं।

3. अद्वैत वेदान्त में नैतिकता की अवधारणा

अद्वैत वेदान्त के संबंध में प्रायः यह भ्रांति व्यक्त की जाती है कि यह केवल ब्रह्मज्ञान और मोक्ष का दर्शन है, इसलिए इसमें नैतिकता का कोई स्वतंत्र स्थान नहीं है। इस मत के अनुसार यदि ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है और जगत् मिथ्या है, तो नैतिकता, कर्तव्य तथा सामाजिक उत्तरदायित्व भी गौण हो जाते हैं। किन्तु यह निष्कर्ष अद्वैत वेदान्त की समग्र दार्शनिक संरचना को समझे बिना निकाला गया है। वास्तव में शंकराचार्य के दर्शन में नैतिकता ब्रह्मज्ञान का विकल्प नहीं, बल्कि उसकी अनिवार्य पूर्वशर्त है।[12]

अद्वैत वेदान्त में नैतिकता का आधार किसी बाह्य दण्ड, पुरस्कार अथवा ईश्वर की आज्ञा नहीं है, बल्कि आत्मा की सार्वभौमिक एकता का बोध है। जब साधक यह अनुभव करता है कि समस्त प्राणियों में एक ही आत्मा विद्यमान है, तब उसका व्यवहार स्वाभाविक रूप से अहिंसक, करुणामय और निष्काम हो जाता है। इस प्रकार नैतिकता किसी बाहरी अनुशासन से नहीं, बल्कि आत्मानुभूति से उत्पन्न होती है।

शंकराचार्य ने ज्ञान की प्राप्ति के लिए साधनचतुष्टय को अनिवार्य माना है। इनमें विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति तथा मुमुक्षुत्व सम्मिलित हैं। षट्सम्पत्ति के अंतर्गत शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान आते हैं। ये सभी गुण नैतिक जीवन के आधार हैं। शम मन के विकारों का नियंत्रण हैय दम इन्द्रियों का संयम हैय तितिक्षा प्रतिकूल परिस्थितियों में धैर्यपूर्वक स्थित रहने की क्षमता हैय श्रद्धा सत्य के प्रति आस्था है तथा समाधान चित्त की स्थिरता का प्रतीक है।[13] इससे स्पष्ट होता है कि आत्मज्ञान का अधिकारी वही है जिसने अपने व्यक्तित्व को नैतिक अनुशासन द्वारा परिष्कृत किया हो।

3.1 चित्तशुद्धि और नैतिक अनुशासन

अद्वैत वेदान्त में चित्तशुद्धि को ज्ञान का निकटतम साधन माना गया है। अशुद्ध मन में न तो सत्य का सम्यक् बोध हो सकता है और न ही ब्रह्मज्ञान की अनुभूति। राग, द्वेष, लोभ, मद, मोह तथा अहंकार मन को विक्षिप्त बनाते हैं। इसलिए नैतिक आचरण का प्रथम उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था बनाए रखना नहीं, बल्कि साधक के अन्तःकरण को शुद्ध करना है।[14] इसी कारण भगवद्गीता में निष्काम कर्मयोग का प्रतिपादन किया गया है। कर्म का त्याग नहीं, बल्कि कर्मफल की आसक्ति का त्याग ही चित्तशुद्धि का साधन है—

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥"[15]

इस श्लोक का आशय यह है कि मनुष्य अपने कर्तव्य का पालन निष्ठापूर्वक करे, किन्तु उसके फल के प्रति आसक्त न हो। निष्काम कर्म अहंकार को क्षीण करता है और व्यक्ति को व्यापक लोकहित की ओर उन्मुख करता है। यही नैतिकता का वास्तविक स्वरूप है।

3.2 समदृष्टि और नैतिक समानता

अद्वैत वेदान्त का एक महत्त्वपूर्ण नैतिक सिद्धान्त समदृष्टि है। आत्मा की एकता का बोध सामाजिक समानता का दार्शनिक आधार बनता है। भगवद्गीता में कहा गया हैकृ

"सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।

ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥"[16]

यहाँ समदर्शन केवल आध्यात्मिक अनुभूति नहीं, बल्कि नैतिक दृष्टि भी है। जब प्रत्येक व्यक्ति में उसी आत्मा का निवास है, तब जाति, वर्ण, लिंग, सम्पत्ति अथवा सामाजिक स्थिति के आधार पर भेदभाव का कोई औचित्य नहीं रह जाता। इस प्रकार अद्वैत वेदान्त मानव गरिमा और नैतिक समानता का गहरा दार्शनिक आधार प्रस्तुत करता है।

3.3 अहिंसा और करुणा का अद्वैत स्वरूप

यद्यपि अहिंसा का सर्वाधिक विकसित प्रतिपादन जैन और बौद्ध परम्पराओं में मिलता है, तथापि अद्वैत वेदान्त में भी उसका आधार अत्यन्त गम्भीर है। यहाँ अहिंसा किसी बाह्य नियम का पालन नहीं, बल्कि आत्मैक्य की अनुभूति का स्वाभाविक परिणाम है। जब सभी प्राणियों में एक ही ब्रह्म का निवास है, तब किसी भी प्रकार की हिंसा अंततः स्वयं अपने ही वास्तविक स्वरूप के विरुद्ध आचरण है।

इसी प्रकार करुणा अद्वैत में दया का भाव मात्र नहीं, बल्कि आत्मीयता का विस्तार है। ज्ञानी पुरुष दूसरों के दुःख को अपना दुःख अनुभव करता है, क्योंकि उसके लिए 'मैं' और 'दूसरा' का विभाजन अविद्या की उपज है। इस प्रकार करुणा, सेवा और परोपकार अद्वैत की नैतिक चेतना के अभिन्न अंग बन जाते हैं।

3.4 नैतिकता और मोक्ष का संबंध

अद्वैत वेदान्त में मोक्ष केवल बौद्धिक ज्ञान का परिणाम नहीं है। यदि व्यक्ति के व्यवहार में सत्य, संयम, करुणा और आत्मानुशासन का अभाव है, तो उसका ज्ञान केवल सैद्धान्तिक रह जाएगा। शंकराचार्य ने बार–बार संकेत किया है कि शास्त्रज्ञान तभी सार्थक है जब वह जीवन में आचरण के रूप में प्रकट हो।[17]

अतः नैतिकता और मोक्ष का संबंध साधन और साध्य का है। नैतिक जीवन चित्तशुद्धि उत्पन्न करता है; चित्तशुद्धि आत्मज्ञान की पात्रता प्रदान करती हैय और आत्मज्ञान मोक्ष का कारण बनता है। इस क्रम में नैतिकता अद्वैत वेदान्त की अनिवार्य आधारशिला है।

3.5 आलोचनात्मक विवेचन

कुछ आधुनिक विद्वानों का मत है कि अद्वैत वेदान्त की परमार्थिक दृष्टि सामाजिक सक्रियता को कमजोर कर सकती है, क्योंकि यदि जगत् मिथ्या है तो सामाजिक न्याय, राजनीतिक उत्तरदायित्व और आर्थिक समानता जैसे प्रश्न गौण हो जाते हैं। यह आलोचना आंशिक रूप से विचारणीय है, किन्तु शंकराचार्य के मूल ग्रन्थों का अध्ययन बताता है कि उन्होंने व्यावहारिक स्तर पर धर्म, कर्तव्य और नैतिक जीवन की उपेक्षा नहीं की। इसके विपरीत, उन्होंने स्पष्ट किया कि आत्मज्ञान से पूर्व धर्मानुष्ठान, संयम और नैतिक अनुशासन अनिवार्य हैं।[18]

आधुनिक संदर्भ में अद्वैत वेदान्त का नैतिक संदेश केवल व्यक्तिगत मोक्ष तक सीमित नहीं रह सकता। आत्मैक्य की भावना सामाजिक न्याय, पर्यावरण संरक्षण, वैश्विक शान्ति और मानवीय सह–अस्तित्व के लिए भी दार्शनिक प्रेरणा प्रदान करती है। इस प्रकार अद्वैत वेदान्त की नैतिक अवधारणा आज के वैश्विक नैतिक विमर्श में भी सार्थक और प्रासंगिक सिद्ध होती है।

4. अद्वैत वेदान्त में नैतिक मूल्यों का दार्शनिक विश्लेषण

अद्वैत वेदान्त में नैतिकता को किसी बाह्य सामाजिक अनुशासन अथवा धार्मिक आदेश के रूप में नहीं देखा गया है, बल्कि इसे आत्मज्ञान की अनिवार्य पूर्वभूमि माना गया है। इस दर्शन का मूल प्रतिपादन यह है कि जब तक मनुष्य का अन्तःकरण राग, द्वेष, अहंकार, लोभ और अविद्या से आच्छादित रहता है, तब तक ब्रह्म का यथार्थ ज्ञान संभव नहीं है। अतः नैतिक मूल्य केवल सामाजिक उपयोगिता के साधन नहीं, बल्कि आध्यात्मिक उन्नति के अपरिहार्य आधार हैं।[19]

शंकराचार्य के अनुसार मनुष्य का वास्तविक स्वरूप नित्य, शुद्ध, बुद्ध और मुक्त आत्मा है, किन्तु अविद्या के कारण वह स्वयं को शरीर, मन और इन्द्रियों तक सीमित मान लेता है। इसी सीमित अहंकार से समस्त अनैतिक प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। अतः नैतिक जीवन का उद्देश्य केवल बाह्य व्यवहार को नियंत्रित करना नहीं, बल्कि उस अज्ञान का क्षय करना है जो मनुष्य को अपने वास्तविक स्वरूप से दूर ले जाता है।[20]

4.1 सत्य (सत्यनिष्ठा) का नैतिक स्वरूप

भारतीय दार्शनिक परम्परा में सत्य को सर्वोच्च नैतिक मूल्य माना गया है। अद्वैत वेदान्त में सत्य का अर्थ केवल तथ्यपरक कथन नहीं, बल्कि जीवन की सम्पूर्ण दिशा का ब्रह्म की ओर उन्मुख होना है।

तैत्तिरीयोपनिषद् में स्पष्ट निर्देश मिलता है—

"सत्यं वद। धर्मं चर।"[21]

यह आदेश केवल सामाजिक शिष्टाचार नहीं है। शंकराचार्य के अनुसार असत्य मनुष्य के अन्तःकरण को विकृत करता है, जबकि सत्य चित्त की निर्मलता को विकसित करता है। सत्यनिष्ठ व्यक्ति का मन स्थिर होता है और वही ब्रह्मज्ञान का अधिकारी बनता है।

आधुनिक संदर्भ में भी सत्य का यह सिद्धान्त अत्यन्त प्रासंगिक है। शैक्षणिक जगत में साहित्यिक चोरी (Plagiarism), शोध में आँकडों का मिथ्याकरण तथा बौद्धिक बेईमानी जैसी समस्याएँ केवल अकादमिक त्रुटियाँ नहीं, बल्कि नैतिक पतन का संकेत हैं। अद्वैत वेदान्त सत्य को ज्ञान की आत्मा मानकर इन प्रवृत्तियों का दार्शनिक प्रतिरोध प्रस्तुत करता है।

4.2 अहिंसा : आत्मैक्य का नैतिक परिणाम

अद्वैत वेदान्त में अहिंसा का आधार दण्ड–भय या सामाजिक नियम नहीं, बल्कि आत्मा की एकता का बोध है। जब ज्ञानी यह अनुभव करता है कि प्रत्येक जीव में वही आत्मा विद्यमान है जो उसके भीतर है, तब हिंसा का कोई औचित्य नहीं रह जाता।

ईशावास्योपनिषद् में सम्पूर्ण जगत को ईश्वरमय माना गया है—

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्"[22]

इस मंत्र का नैतिक अर्थ यह है कि प्रत्येक प्राणी सम्मान का अधिकारी है। आधुनिक युग में जातीय हिंसा, धार्मिक असहिष्णुता तथा युद्ध की परिस्थितियों में अद्वैत की यह दृष्टि वैश्विक शान्ति का दार्शनिक आधार बन सकती है।

4.3 करुणा और लोकसंग्रह

यद्यपि अद्वैत वेदान्त का अंतिम लक्ष्य आत्मज्ञान है, फिर भी वह समाज से पलायन का समर्थन नहीं करता। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को लोकसंग्रह के लिए कर्म करने की प्रेरणा देते हैं—

"यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तदेवेतरो जनः।"[23]

शंकराचार्य इस श्लोक की व्याख्या करते हुए बताते हैं कि ज्ञानी पुरुष स्वयं किसी व्यक्तिगत लाभ के लिए कर्म नहीं करता, बल्कि समाज के कल्याण और लोकव्यवस्था की रक्षा के लिए कार्य करता है।[24] इस दृष्टि से करुणा केवल भावनात्मक संवेदना नहीं, बल्कि सक्रिय नैतिक उत्तरदायित्व है। शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण तथा सामाजिक न्याय के क्षेत्रों में किया गया निःस्वार्थ कार्य अद्वैत की लोकसंग्रह की भावना का ही व्यावहारिक रूप है।

4.4 आत्मसंयम और नैतिक व्यक्तित्व

अद्वैत वेदान्त आत्मसंयम को नैतिक जीवन की धुरी मानता है। इन्द्रिय–निग्रह के बिना न तो चित्त स्थिर हो सकता है और न ज्ञान का उदय।

कठोपनिषद् में शरीर की तुलना रथ से करते हुए कहा गया है —

'ष्आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।"*[25]

इस रूपक में बुद्धि सारथी है, मन लगाम है और इन्द्रियाँ घोडे हैं। यदि मन और इन्द्रियाँ अनियंत्रित हों, तो जीवन का लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सकता।

समकालीन उपभोक्तावादी संस्कृति में इच्छाओं का अनियंत्रित विस्तार व्यक्ति को तनाव, असंतोष और प्रतिस्पर्धा की ओर ले जाता है। अद्वैत वेदान्त आत्मसंयम के माध्यम से संतुलित, उत्तरदायी और विवेकपूर्ण जीवन का आदर्श प्रस्तुत करता है।

4.5 नैतिकता और सार्वभौमिक उत्तरदायित्व

अद्वैत वेदान्त की सबसे बडी विशेषता यह है कि उसकी नैतिकता किसी विशेष समुदाय, धर्म, राष्ट्र या वर्ग तक सीमित नहीं है। आत्मा की एकता का सिद्धान्त सम्पूर्ण मानवता तथा समस्त जीव–जगत को नैतिक संवेदना के दायरे में लाता है।

आज जब जलवायु परिवर्तन, जैव–विविधता का संकट, आर्थिक विषमता और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) जैसे नए नैतिक प्रश्न सामने हैं, तब अद्वैत वेदान्त का ष्एकात्मभावष केवल आध्यात्मिक सिद्धान्त नहीं, बल्कि वैश्विक नैतिकता का आधार बन सकता है। यदि मनुष्य प्रकृति को स्वयं से पृथक न मानकर उसी सार्वभौमिक सत्ता की अभिव्यक्ति समझे, तो पर्यावरण संरक्षण केवल नीति नहीं, बल्कि नैतिक कर्तव्य बन जाता है।

आलोचनात्मक टिप्पणी

यहीं अद्वैत वेदान्त की वास्तविक शक्ति दिखाई देती है। यह नैतिकता को केवल "क्या करना चाहिए" (What ought to be done) के प्रश्न तक सीमित नहीं रखता, बल्कि ष्मनुष्य ऐसा क्यों करे?" (Why ought one to act morally?) का दार्शनिक उत्तर भी देता है। उसका उत्तर है—क्योंकि समस्त अस्तित्व मूलतः एक है। यह आधार केवल नियम–आधारित नैतिकता से अधिक गहरा और अस्तित्वगत (ontological) है।

5. अद्वैत वेदान्त में नैतिक मूल्यों का दार्शनिक विश्लेषण

अद्वैत वेदान्त में नैतिक मूल्यों का स्वरूप केवल सामाजिक अनुशासन अथवा धार्मिक आचार–संहिता तक सीमित नहीं है, बल्कि वह मनुष्य के अस्तित्व (Ontology), ज्ञान (Epistemology) और मोक्ष (oteriology) से अभिन्न रूप से सम्बद्ध है। अद्वैत का मूल प्रतिपादन है कि आत्मा और ब्रह्म में कोई वास्तविक भेद नहीं है। अतः नैतिकता का आधार किसी बाह्य सत्ता का भय या दण्ड नहीं, बल्कि आत्मा की सार्वभौमिक एकता का प्रत्यक्ष बोध है। इस दृष्टि से अद्वैत वेदान्त की नैतिकता का आधार अस्तित्वगत (Ontological Ethics) है, न कि केवल कर्तव्यपरक (Deontological) अथवा परिणामपरक (Consequential)। शंकराचार्य के अनुसार अविद्या ही समस्त बन्धनों का मूल कारण है। यही अविद्या मनुष्य में श्मैंश और श्मेराश की संकीर्ण भावना उत्पन्न करती है, जिसके परिणामस्वरूप लोभ, मोह, हिंसा, द्वेष तथा

अहंकार जैसी अनैतिक प्रवृत्तियाँ जन्म लेती हैं। इसलिए अद्वैत वेदान्त में नैतिक जीवन का उद्देश्य बाह्य नियंत्रण नहीं, बल्कि अन्तःकरण का परिष्कार है।[26]

(क) सत्य रू ब्रह्मस्वरूप का नैतिक आयाम

अद्वैत वेदान्त में सत्य केवल नैतिक सद्गुण नहीं, बल्कि ब्रह्म का स्वरूप है। तैत्तिरीयोपनिषद् में ब्रह्म को ष्सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मष् कहा गया है।[27] इससे स्पष्ट होता है कि सत्य का पालन केवल सामाजिक विश्वसनीयता का प्रश्न नहीं, बल्कि ब्रह्मस्वरूप की ओर उन्मुख होने का आध्यात्मिक साधन है।

शंकराचार्य के अनुसार असत्य मनुष्य की बुद्धि को विकृत करता है और चित्त की निर्मलता को नष्ट करता है। इसके विपरीत सत्यनिष्ठा अन्तःकरण को स्थिर बनाती है तथा ज्ञान की पात्रता उत्पन्न करती है। इस प्रकार सत्य का मूल्य बाह्य व्यवहार से अधिक अन्तःकरण की शुद्धि में निहित है।

दार्शनिक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि अद्वैत में सत्य एक अस्तित्वगत मूल्य (Ontological Value) है, जबकि आधुनिक नैतिक दर्शन में सत्य प्रायः सामाजिक मूल्य (Social Value) के रूप में विवेचित होता है। यही अद्वैत की विशिष्टता है।

(ख) अहिंसा : आत्मैक्य की नैतिक अभिव्यक्ति

अद्वैत वेदान्त में अहिंसा का आधार अत्यन्त गम्भीर है। यहाँ अहिंसा किसी विधि–निषेध का परिणाम नहीं, बल्कि आत्मा की एकता का स्वाभाविक निष्कर्ष है। जब ज्ञानी यह अनुभव करता है कि प्रत्येक प्राणी में वही आत्मा विद्यमान है, तब किसी भी प्रकार की हिंसा आत्मविरोधी आचरण बन जाती है।

भगवद्गीता में कहा गया है—

''"सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।

ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥"**[28]

यह समदृष्टि केवल आध्यात्मिक अनुभव नहीं, बल्कि नैतिक चेतना का सर्वोच्च रूप है। इसी कारण अद्वैत वेदान्त में करुणा, मैत्री और सह–अस्तित्व के मूल्य स्वतः विकसित होते हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जैन दर्शन अहिंसा को सर्वोच्च व्रत मानता है, जबकि अद्वैत वेदान्त अहिंसा को आत्मज्ञान का स्वाभाविक परिणाम मानता है। यही दोनों दृष्टियों का मौलिक अन्तर है।

(ग) आत्मसंयम : नैतिक व्यक्तित्व का आधार

अद्वैत वेदान्त में आत्मसंयम का अर्थ इच्छाओं का दमन नहीं, बल्कि उनका विवेकपूर्ण नियमन है। शंकराचार्य ने शम और दम को ज्ञान की प्राप्ति के लिए अनिवार्य माना है।[29]

वर्तमान उपभोक्तावादी संस्कृति में मनुष्य की इच्छाएँ निरन्तर बढती जा रही हैं। परिणामस्वरूप तनाव, असंतोष तथा प्रतिस्पर्धा की प्रवृत्ति भी बढ रही है। अद्वैत वेदान्त आत्मसंयम के माध्यम से यह सिखाता है कि वास्तविक सुख बाह्य भोगों में नहीं, बल्कि अन्तःकरण की शान्ति में है।

इस दृष्टि से आत्मसंयम केवल व्यक्तिगत सद्गुण नहीं, बल्कि सामाजिक उत्तरदायित्व भी है। संयमित व्यक्ति संसाधनों का दुरुपयोग नहीं करता तथा पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने में भी योगदान देता है।

(घ) करुणा और लोकमंगल

यद्यपि अद्वैत वेदान्त का परम लक्ष्य मोक्ष है, तथापि वह लोककल्याण की उपेक्षा नहीं करता। शंकराचार्य के भाष्यों में अनेक स्थानों पर ज्ञानी पुरुष के लोकसंग्रह की चर्चा मिलती है। ज्ञानी स्वयं के लिए नहीं, बल्कि समाज के हित के लिए भी कर्म करता है।[30]

यहाँ करुणा का अर्थ केवल दया नहीं, बल्कि दूसरे के दुःख को अपने ही अस्तित्व का दुःख समझना है। जब आत्मा सर्वत्र एक है, तब परोपकार किसी बाहरी कर्तव्य का पालन नहीं, बल्कि आत्मबोध की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है।

यही सिद्धान्त आधुनिक मानवीय अधिकार (Human Rights), सामाजिक न्याय तथा विश्वबन्धुत्व की नैतिक आधारभूमि भी बन सकता है।

(ङ) निष्काम कर्म और नैतिक उत्तरदायित्व

कुछ विद्वान यह मानते हैं कि अद्वैत वेदान्त केवल ज्ञानमार्ग का दर्शन है, इसलिए उसमें कर्म का महत्त्व नहीं है। यह निष्कर्ष शंकराचार्य के समग्र चिंतन के अनुरूप नहीं है।

शंकराचार्य स्पष्ट करते हैं कि ब्रह्मज्ञान से पूर्व निष्काम कर्म चित्तशुद्धि का प्रमुख साधन है। भगवद्गीता में कहा गया हैकृ

'"योगः कर्मसु कौशलम्।"*[31]

यह कौशल केवल दक्षता नहीं, बल्कि स्वार्थरहित उत्तरदायित्व है। निष्काम कर्म व्यक्ति को अहंकार से मुक्त करता है और लोकहित की भावना को विकसित करता है। इसलिए अद्वैत वेदान्त में कर्म और नैतिकता का सम्बन्ध साधनात्मक (प्देजतनउमदजंस) होते हुए भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

दार्शनिक मूल्यांकन

दार्शनिक दृष्टि से अद्वैत वेदान्त की नैतिकता की सबसे बडी विशेषता यह है कि वह नैतिकता को केवल नियमों (Rulè) या परिणामों (Consequencè) पर आधारित नहीं करती, बल्कि अस्तित्व की एकता (Unity of Being) पर आधारित करती है। इस कारण इसकी नैतिकता का आधार अधिक व्यापक और गहन है।

फिर भी एक आलोचनात्मक प्रश्न उठता है कि यदि जगत् परमार्थतः मिथ्या है, तो नैतिकता का स्थायी आधार कैसे सम्भव है?

इसका उत्तर स्वयं शंकराचार्य की व्यावहारिक (व्यावहारिक सत्ता) और परमार्थिक (परमार्थिक सत्ता) की अवधारणा में निहित है। जब तक आत्मज्ञान नहीं होता, तब तक धर्म, नैतिकता, कर्तव्य और सामाजिक उत्तरदायित्व पूर्णतः सार्थक हैं। इसलिए अद्वैत वेदान्त नैतिकता का निषेध नहीं करता, बल्कि उसे ब्रह्मज्ञान की अनिवार्य सीढी के रूप में स्वीकार करता है।[32]

इसी आधार पर कहा जा सकता है कि अद्वैत वेदान्त में नैतिक मूल्य केवल सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकता नहीं, बल्कि आत्मसाक्षात्कार की आध्यात्मिक प्रक्रिया के आवश्यक अंग हैं। यही इसकी मौलिक दार्शनिक उपलब्धि है।

5. अद्वैत वेदान्त में नैतिक मूल्यों का दार्शनिक विश्लेषण

अद्वैत वेदान्त में नैतिक मूल्यों का स्वरूप केवल सामाजिक अनुशासन अथवा धार्मिक आचार–संहिता तक सीमित नहीं है, बल्कि वह मनुष्य के अस्तित्व (Ontology), ज्ञान (Epistemology) और मोक्ष (Soteriology) से अभिन्न रूप से सम्बद्ध है। अद्वैत का मूल प्रतिपादन है कि आत्मा और ब्रह्म में कोई वास्तविक भेद नहीं है। अतः नैतिकता का आधार किसी बाह्य सत्ता का भय या दण्ड नहीं, बल्कि आत्मा की सार्वभौमिक एकता का प्रत्यक्ष बोध है। इस दृष्टि से अद्वैत

वेदान्त की नैतिकता का आधार अस्तित्वगत (Ontological Ethics) है, न कि केवल कर्तव्यपरक (Deontological) अथवा परिणामपरक (Consequential)।

शंकराचार्य के अनुसार अविद्या ही समस्त बन्धनों का मूल कारण है। यही अविद्या मनुष्य में 'मैं' और 'मेरा' की संकीर्ण भावना उत्पन्न करती है, जिसके परिणामस्वरूप लोभ, मोह, हिंसा, द्वेष तथा अहंकार जैसी अनैतिक प्रवृत्तियाँ जन्म लेती हैं। इसलिए अद्वैत वेदान्त में नैतिक जीवन का उद्देश्य बाह्य नियंत्रण नहीं, बल्कि अन्तःकरण का परिष्कार है।[33]

(क) सत्य : ब्रह्मस्वरूप का नैतिक आयाम

अद्वैत वेदान्त में सत्य केवल नैतिक सद्गुण नहीं, बल्कि ब्रह्म का स्वरूप है। तैत्तिरीयोपनिषद् में ब्रह्म को ष्सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मष कहा गया है।[34] इससे स्पष्ट होता है कि सत्य का पालन केवल सामाजिक विश्वसनीयता का प्रश्न नहीं, बल्कि ब्रह्मस्वरूप की ओर उन्मुख होने का आध्यात्मिक साधन है।

शंकराचार्य के अनुसार असत्य मनुष्य की बुद्धि को विकृत करता है और चित्त की निर्मलता को नष्ट करता है। इसके विपरीत सत्यनिष्ठा अन्तःकरण को स्थिर बनाती है तथा ज्ञान की पात्रता उत्पन्न करती है। इस प्रकार सत्य का मूल्य बाह्य व्यवहार से अधिक अन्तःकरण की शुद्धि में निहित है।

दार्शनिक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि अद्वैत में सत्य एक अस्तित्वगत मूल्य (Ontological Value) है, जबकि आधुनिक नैतिक दर्शन में सत्य प्रायः सामाजिक मूल्य (Social Value) के रूप में विवेचित होता है। यही अद्वैत की विशिष्टता है।

(ख) अहिंसा : आत्मैक्य की नैतिक अभिव्यक्ति

अद्वैत वेदान्त में अहिंसा का आधार अत्यन्त गम्भीर है। यहाँ अहिंसा किसी विधि–निषेध का परिणाम नहीं, बल्कि आत्मा की एकता का स्वाभाविक निष्कर्ष है। जब ज्ञानी यह अनुभव करता है कि प्रत्येक प्राणी में वही आत्मा विद्यमान है, तब किसी भी प्रकार की हिंसा आत्मविरोधी आचरण बन जाती है।

भगवद्गीता में कहा गया है—

''"सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।

ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥"**[35]

यह समदृष्टि केवल आध्यात्मिक अनुभव नहीं, बल्कि नैतिक चेतना का सर्वोच्च रूप है। इसी कारण अद्वैत वेदान्त में करुणा, मैत्री और सह–अस्तित्व के मूल्य स्वतः विकसित होते हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जैन दर्शन अहिंसा को सर्वोच्च व्रत मानता है, जबकि अद्वैत वेदान्त अहिंसा को आत्मज्ञान का स्वाभाविक परिणाम मानता है। यही दोनों दृष्टियों का मौलिक अन्तर है।

(ग) आत्मसंयम : नैतिक व्यक्तित्व का आधार

अद्वैत वेदान्त में आत्मसंयम का अर्थ इच्छाओं का दमन नहीं, बल्कि उनका विवेकपूर्ण नियमन है। शंकराचार्य ने शम और दम को ज्ञान की प्राप्ति के लिए अनिवार्य माना है।[36]

वर्तमान उपभोक्तावादी संस्कृति में मनुष्य की इच्छाएँ निरन्तर बढती जा रही हैं। परिणामस्वरूप तनाव, असंतोष तथा प्रतिस्पर्धा की प्रवृत्ति भी बढ रही है। अद्वैत वेदान्त आत्मसंयम के माध्यम से यह सिखाता है कि वास्तविक सुख बाह्य भोगों में नहीं, बल्कि अन्तःकरण की शान्ति में है।

इस दृष्टि से आत्मसंयम केवल व्यक्तिगत सद्गुण नहीं, बल्कि सामाजिक उत्तरदायित्व भी है। संयमित व्यक्ति संसाधनों का दुरुपयोग नहीं करता तथा पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने में भी योगदान देता है।

(घ) करुणा और लोकमंगल

यद्यपि अद्वैत वेदान्त का परम लक्ष्य मोक्ष है, तथापि वह लोककल्याण की उपेक्षा नहीं करता। शंकराचार्य के भाष्यों में अनेक स्थानों पर ज्ञानी पुरुष के लोकसंग्रह की चर्चा मिलती है। ज्ञानी स्वयं के लिए नहीं, बल्कि समाज के हित के लिए भी कर्म करता है।[5]

यहाँ करुणा का अर्थ केवल दया नहीं, बल्कि दूसरे के दुःख को अपने ही अस्तित्व का दुःख समझना है। जब आत्मा सर्वत्र एक है, तब परोपकार किसी बाहरी कर्तव्य का पालन नहीं, बल्कि आत्मबोध की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है।

यही सिद्धान्त आधुनिक मानवीय अधिकार (Human Rights), सामाजिक न्याय तथा विश्वबन्धुत्व की नैतिक आधारभूमि भी बन सकता है।

(ङ) निष्काम कर्म और नैतिक उत्तरदायित्व

कुछ विद्वान यह मानते हैं कि अद्वैत वेदान्त केवल ज्ञानमार्ग का दर्शन है, इसलिए उसमें कर्म का महत्त्व नहीं है। यह निष्कर्ष शंकराचार्य के समग्र चिंतन के अनुरूप नहीं है।

शंकराचार्य स्पष्ट करते हैं कि ब्रह्मज्ञान से पूर्व निष्काम कर्म चित्तशुद्धि का प्रमुख साधन है। भगवद्गीता में कहा गया है—

'"योगः कर्मसु कौशलम्।"*[37]

यह कौशल केवल दक्षता नहीं, बल्कि स्वार्थरहित उत्तरदायित्व है। निष्काम कर्म व्यक्ति को अहंकार से मुक्त करता है और लोकहित की भावना को विकसित करता है। इसलिए अद्वैत वेदान्त में कर्म और नैतिकता का सम्बन्ध साधनात्मक (Instrumental) होते हुए भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

दार्शनिक मूल्यांकन

दार्शनिक दृष्टि से अद्वैत वेदान्त की नैतिकता की सबसे बडी विशेषता यह है कि वह नैतिकता को केवल नियमों (Rulè) या परिणामों (Consequencè) पर आधारित नहीं करती, बल्कि अस्तित्व की एकता (Unity of Being) पर आधारित करती है। इस कारण इसकी नैतिकता का आधार अधिक व्यापक और गहन है।

फिर भी एक आलोचनात्मक प्रश्न उठता है कि यदि जगत् परमार्थतः मिथ्या है, तो नैतिकता का स्थायी आधार कैसे सम्भव है?

इसका उत्तर स्वयं शंकराचार्य की व्यावहारिक (व्यावहारिक सत्ता) और परमार्थिक (परमार्थिक सत्ता) की अवधारणा में निहित है। जब तक आत्मज्ञान नहीं होता, तब तक धर्म, नैतिकता, कर्तव्य और सामाजिक उत्तरदायित्व पूर्णतः सार्थक हैं। इसलिए अद्वैत वेदान्त नैतिकता का निषेध नहीं करता, बल्कि उसे ब्रह्मज्ञान की अनिवार्य सीढी के रूप में स्वीकार करता है।[38]

इसी आधार पर कहा जा सकता है कि अद्वैत वेदान्त में नैतिक मूल्य केवल सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकता नहीं, बल्कि आत्मसाक्षात्कार की आध्यात्मिक प्रक्रिया के आवश्यक अंग हैं। यही इसकी मौलिक दार्शनिक उपलब्धि है।

6. समकालीन नैतिक विमर्श के परिप्रेक्ष्य में अद्वैत वेदान्त : एक आलोचनात्मक अध्ययन

एकविंशति (21वीं) शताब्दी में नैतिक दर्शन के समक्ष अनेक नई चुनौतियाँ उभरकर सामने आई हैं। वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद, पर्यावरणीय संकट, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence), जैव–प्रौद्योगिकी, आर्थिक असमानता तथा सांस्कृतिक संघर्षों ने नैतिकता की पारम्परिक अवधारणाओं को पुनर्विचार के लिए बाध्य किया है। ऐसे परिवेश में अद्वैत वेदान्त का नैतिक चिंतन केवल आध्यात्मिक साधना का विषय न होकर वैश्विक नैतिक विमर्श के लिए भी एक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक आधार प्रस्तुत करता है।[39]

अद्वैत वेदान्त का मूल सिद्धान्त है कि सम्पूर्ण सृष्टि में एक ही ब्रह्म की अभिव्यक्ति है। यदि इस सिद्धान्त को समकालीन नैतिक विमर्श के संदर्भ में देखा जाए, तो यह मनुष्य और मनुष्य के बीच ही नहीं, बल्कि मनुष्य और प्रकृति के बीच भी एक गहरे नैतिक सम्बन्ध की स्थापना करता है। आधुनिक नैतिक संकटों का एक प्रमुख कारण प्रकृति को केवल संसाधन (Resource) के रूप में देखना है, जबकि अद्वैत वेदान्त प्रकृति को ब्रह्म की अभिव्यक्ति मानकर उसके प्रति श्रद्धा, संरक्षण और सह–अस्तित्व की भावना विकसित करता है।[40]

6.1 पर्यावरणीय नैतिकता और अद्वैत वेदान्त

आज पर्यावरण संरक्षण वैश्विक चिंता का विषय है। जलवायु परिवर्तन, जैव–विविधता का ह्रास, वनों की कटाई तथा प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन ने मानव सभ्यता के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न खडा कर दिया है। इन समस्याओं का मूल कारण मनुष्य का प्रकृति से पृथक और उस पर अधिकार रखने वाला दृष्टिकोण है।

अद्वैत वेदान्त इस दृष्टिकोण का मूलभूत प्रतिवाद प्रस्तुत करता है। ईशावास्योपनिषद् का उद्घोष—

''"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत"*[41]

यह स्पष्ट करता है कि सम्पूर्ण जगत् ईश्वर या ब्रह्म से व्याप्त है। इस आधार पर प्रकृति का संरक्षण केवल उपयोगितावादी नीति नहीं, बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक उत्तरदायित्व बन जाता है। इस प्रकार अद्वैत वेदान्त पर्यावरणीय नैतिकता को आध्यात्मिक आधार प्रदान करता है, जो आधुनिक पर्यावरण–दर्शन की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

6.2 सामाजिक न्याय और मानवीय समानता

समकालीन समाज में जातीय भेदभाव, आर्थिक विषमता, लैंगिक असमानता तथा सामाजिक बहिष्करण जैसी समस्याएँ आज भी विद्यमान हैं। आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था समानता और मानवाधिकारों की बात करती है, किन्तु उनका दार्शनिक आधार प्रायः संवैधानिक या राजनीतिक सिद्धान्तों तक सीमित रहता है।

अद्वैत वेदान्त इन मूल्यों को अधिक गहन आधार प्रदान करता है। जब प्रत्येक व्यक्ति में एक ही आत्मा का निवास है, तब किसी भी प्रकार का भेदभाव दार्शनिक रूप से असंगत हो जाता है। भगवद्गीता में समदृष्टि का सिद्धान्त इसी नैतिक समानता का प्रतिपादन करता है।[42]

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि अद्वैत वेदान्त समानता का आधार अधिकार (Right) नहीं, बल्कि आत्मैक्य (Spiritual Unity) को मानता है। यही इसकी विशिष्टता है।

6.3 उपभोक्तावाद और अद्वैत की नैतिक दृष्टि

आधुनिक उपभोक्तावादी संस्कृति ने मनुष्य की आवश्यकताओं और इच्छाओं के बीच की सीमा को धूमिल कर दिया है। व्यक्ति की सफलता का मापदण्ड उसके चरित्र के स्थान पर उसकी आर्थिक सम्पन्नता बनता जा रहा है। परिणामस्वरूप तनाव, प्रतिस्पर्धा, असंतोष और सामाजिक विघटन जैसी समस्याएँ बढ रही हैं।

अद्वैत वेदान्त इस संकट का समाधान वैराग्य, आत्मसंयम और सन्तोष जैसे नैतिक मूल्यों के माध्यम से प्रस्तुत करता है। शंकराचार्य के अनुसार बाह्य वस्तुओं में स्थायी सुख की खोज अविद्या का परिणाम है। वास्तविक आनन्द आत्मस्वरूप में स्थित होने से प्राप्त होता है।[43]

इस प्रकार अद्वैत वेदान्त आधुनिक उपभोक्तावाद की आलोचना केवल नैतिक आधार पर नहीं, बल्कि दार्शनिक आधार पर भी करता है।

6.4 कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और नैतिकता

वर्तमान युग में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) ने नैतिक दर्शन के समक्ष नए प्रश्न उपस्थित किए हैं—क्या मशीनें नैतिक निर्णय ले सकती हैं? क्या तकनीकी प्रगति मानव गरिमा को प्रभावित करेगी? क्या एल्गोरिद्मिक निर्णय न्यायपूर्ण हो सकते हैं? अद्वैत वेदान्त इन प्रश्नों का प्रत्यक्ष उत्तर नहीं देता, क्योंकि यह आधुनिक तकनीकी विकास से पूर्व का दर्शन है। किन्तु इसका मूल सिद्धान्तकृमानव चेतना की सर्वोच्चता और आत्मा की गरिमाकृयह संकेत देता है कि कोई भी तकनीकी व्यवस्था मनुष्य की नैतिक चेतना और उत्तरदायित्व का स्थान नहीं ले सकती। अतः AI का विकास मानव कल्याण, न्याय, पारदर्शिता और करुणा जैसे मूल्यों के अधीन होना चाहिए।

यह अद्वैत वेदान्त की समकालीन प्रासंगिकता का एक नया आयाम है, जिस पर भविष्य में व्यापक शोध की आवश्यकता है।

6.5 आलोचनात्मक समीक्षा

यद्यपि अद्वैत वेदान्त की नैतिक दृष्टि अत्यन्त व्यापक है, तथापि इसके संबंध में कुछ आलोचनाएँ भी प्रस्तुत की जाती हैं। कुछ आधुनिक विद्वानों का मत है कि अद्वैत का मोक्ष–केंद्रित दृष्टिकोण सामाजिक और राजनीतिक संघर्षों के प्रति पर्याप्त सक्रियता विकसित नहीं कर पाता। उनका तर्क है कि यदि अंतिम लक्ष्य व्यक्तिगत आत्मज्ञान है, तो सामाजिक परिवर्तन का प्रश्न गौण हो सकता है।

यह आलोचना विचारणीय अवश्य है, किन्तु पूर्णतः स्वीकार्य नहीं। शंकराचार्य ने व्यावहारिक स्तर पर धर्म, कर्तव्य, सेवा और लोकसंग्रह को अस्वीकार नहीं किया। उनके अनुसार आत्मज्ञान से पूर्व नैतिक अनुशासन अनिवार्य है और आत्मज्ञान के पश्चात् भी ज्ञानी का आचरण लोककल्याणकारी होता है। इसलिए अद्वैत वेदान्त को सामाजिक निष्क्रियता का दर्शन कहना उसके मूल स्वरूप का सरलीकरण होगा।

दार्शनिक निष्कर्ष

समकालीन नैतिक विमर्श के आलोक में अद्वैत वेदान्त का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि यह दर्शन केवल आध्यात्मिक मुक्ति का मार्ग नहीं, बल्कि नैतिक उत्तरदायित्व, सामाजिक समरसता और वैश्विक सह–अस्तित्व का भी गहन दार्शनिक आधार प्रस्तुत करता है। इसकी सबसे बडी विशेषता यह है कि यह नैतिकता को बाह्य नियमों पर नहीं, बल्कि अस्तित्व की एकता पर आधारित करता है। यही कारण है कि अद्वैत वेदान्त का नैतिक चिंतन आज भी विश्व के समक्ष उपस्थित नैतिक संकटों के समाधान में महत्त्वपूर्ण बौद्धिक योगदान दे सकता है।

7. निष्कर्ष (Conclusion)

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि अद्वैत वेदान्त में नैतिकता कोई गौण अथवा केवल व्यावहारिक विषय नहीं है, बल्कि वह सम्पूर्ण दार्शनिक प्रणाली का अभिन्न एवं अनिवार्य अंग है। यद्यपि अद्वैत वेदान्त का परम लक्ष्य ब्रह्मज्ञान एवं मोक्ष की प्राप्ति है, तथापि इस लक्ष्य तक पहुँचने का मार्ग नैतिक अनुशासन, चित्तशुद्धि तथा आत्मसंयम से होकर ही जाता

है। इस प्रकार नैतिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन अद्वैत वेदान्त में परस्पर विरोधी न होकर परस्पर पूरक सिद्ध होते हैं।

इस शोध से यह भी स्पष्ट हुआ कि अद्वैत वेदान्त की नैतिकता का आधार बाह्य नियम, दण्ड अथवा सामाजिक अनुबंध नहीं है, बल्कि आत्मा और ब्रह्म की अभिन्नता का दार्शनिक सिद्धान्त है। जब समस्त प्राणियों में एक ही आत्मा का दर्शन किया जाता है, तब सत्य, अहिंसा, करुणा, समदृष्टि, आत्मसंयम तथा निष्काम कर्म जैसे नैतिक मूल्य स्वतः विकसित होते हैं। इसलिए अद्वैत वेदान्त की नैतिकता केवल आचरण–संहिता नहीं, बल्कि अस्तित्व की एकात्मकता की अनुभूति का व्यावहारिक रूप है।

शोध के दौरान यह भी स्पष्ट हुआ कि अद्वैत वेदान्त पर यह आरोप कि वह केवल निवृत्तिमार्गी अथवा सामाजिक निष्क्रियता का दर्शन है, उसके मूल ग्रन्थों के आलोक में पूर्णतः स्वीकार्य नहीं है। शंकराचार्य ने ज्ञान की पात्रता के लिए साधनचतुष्टय, चित्तशुद्धि, निष्काम कर्म तथा धर्माचरण को अनिवार्य माना है। इससे स्पष्ट है कि नैतिक जीवन आत्मज्ञान का विकल्प नहीं, बल्कि उसकी आवश्यक पूर्वपीठिका है। अतः अद्वैत वेदान्त सामाजिक उत्तरदायित्व का निषेध नहीं करता, बल्कि उसे आध्यात्मिक आधार प्रदान करता है।

समकालीन परिप्रेक्ष्य में अद्वैत वेदान्त का नैतिक चिंतन और भी अधिक प्रासंगिक प्रतीत होता है। आज जब मानवता उपभोक्तावाद, पर्यावरणीय संकट, हिंसा, असहिष्णुता, आर्थिक असमानता तथा तकनीकी नैतिकता जैसी चुनौतियों से जूझ रही है, तब अद्वैत का "एकात्मभाव" वैश्विक नैतिकता के लिए एक सुदृढ दार्शनिक आधार प्रस्तुत करता है। यह दर्शन मनुष्य और प्रकृति, व्यक्ति और समाज तथा आत्मकल्याण और लोककल्याण के बीच कृत्रिम विभाजन को समाप्त कर समन्वित दृष्टिकोण विकसित करता है।

दार्शनिक दृष्टि से इस अध्ययन की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि अद्वैत वेदान्त नैतिकता को केवल कर्तव्य (Duty) या परिणाम (Consequence) के आधार पर नहीं, बल्कि अस्तित्वगत एकता (Ontological Unity) के आधार पर स्थापित करता है। यही इसकी मौलिकता है और यही इसे आधुनिक नैतिक सिद्धान्तों से विशिष्ट बनाती है। इस कारण अद्वैत वेदान्त का नैतिक चिंतन केवल भारतीय दर्शन की धरोहर नहीं, बल्कि वैश्विक नैतिक विमर्श के लिए भी एक महत्त्वपूर्ण वैचारिक योगदान है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अद्वैत वेदान्त में नैतिक मूल्य मोक्षमार्ग के साधन मात्र नहीं हैं, बल्कि वे मानव व्यक्तित्व के आध्यात्मिक, सामाजिक और सार्वभौमिक विकास के आधारभूत तत्व हैं। यदि समकालीन नैतिक विमर्श में अद्वैत वेदान्त की इस एकात्मवादी दृष्टि का समुचित समावेश किया जाए, तो अधिक मानवीय, न्यायपूर्ण और संतुलित वैश्विक समाज की स्थापना की दिशा में सार्थक बौद्धिक आधार प्राप्त हो सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः–

1. शंकराचार्य. ब्रह्मसूत्रभाष्यम् (अध्यासभाष्य सहित). गोरखपुर: गीता प्रेस।
2. Radhakrishnan, S- Indian Philosophy- Vol- II- New Delhi: Oxford University Press.
3. बृहदारण्यकोपनिषद्, शांकरभाष्य, गीता प्रेस, गोरखपुर।
4. छान्दोग्योपनिषद्, शांकरभाष्य, गीता प्रेस, गोरखपुर।
5. माण्डूक्योपनिषद् (गौडपादकारिका सहित), शांकरभाष्य, गीता प्रेस, गोरखपुर।
6. शंकराचार्य. उपदेशसाहस्री. गीता प्रेस, गोरखपुर।

7. विवेकचूडामणि. गीता प्रेस, गोरखपुर।
8. भगवद्गीता, शांकरभाष्य सहित. गीता प्रेस, गोरखपुर।
9. Hiriyanna, M- Outlines of Indian Philosophy- Delhi: Motilal Banarsidass.
10- Dasgupta, Surendranath- A History of Indian Philosophy- Vol- I- Delhi: Motilal Banarsidass-
11. शंकराचार्य. ब्रह्मसूत्रभाष्यम्, साधनचतुष्टय एवं चित्तशुद्धि सम्बन्धी विवेचन।
12. शंकराचार्य. विवेकचूडामणि, साधनचतुष्टय प्रकरण।
13. विवेकचूडामणि, शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा एवं समाधान सम्बन्धी श्लोक।
14. शंकराचार्य. ब्रह्मसूत्रभाष्यम चित्तशुद्धि सम्बन्धी विवेचन।
15. भगवद्गीता 2.47, शांकरभाष्य सहित।
16. भगवद्गीता 6.29, शांकरभाष्य सहित।
17. शंकराचार्य. उपदेशसाहस्री, ज्ञान एवं आचरण सम्बन्धी विवेचन।
18. शंकराचार्य. ब्रह्मसूत्रभाष्यम व्यवहारिक एवं पारमार्थिक सत्ता सम्बन्धी विवेचन।
19. शंकराचार्य. विवेकचूडामणि, नैतिक मूल्यों एवं आत्मज्ञान सम्बन्धी विवेचन।
20. शंकराचार्य. ब्रह्मसूत्रभाष्यम अविद्या एवं अहंकार सम्बन्धी विवेचन।
21. तैत्तिरीयोपनिषद्, शिक्षावल्ली — "सत्यं वद, धर्मं चर।"
22. ईशावास्योपनिषद्, मन्त्र 1 — "ईशावास्यमिदं सर्वम."
23. . भगवद्गीता, अध्याय 3, श्लोक 21, शांकरभाष्य सहित।
24. शंकराचार्य. भगवद्गीताभाष्य, अध्याय 3, श्लोक 21 पर भाष्य (लोकसंग्रह का विवेचन)।
25. कठोपनिषद्, अध्याय 1, वल्ली 3, मन्त्र 3–9 (रथरूपक), गीता प्रेस, गोरखपुर।
26. शंकराचार्य. ब्रह्मसूत्रभाष्यम, अविद्या एवं अन्तःकरण–शुद्धि सम्बन्धी विवेचन।
27. तैत्तिरीयोपनिषद्, ब्रह्मानन्दवल्ली — "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।"
28. भगवद्गीता, अध्याय 6, श्लोक 29, शांकरभाष्य सहित।
29. विवेकचूडामणि, शम, दम आदि साधनचतुष्टय सम्बन्धी श्लोक, गीता प्रेस, गोरखपुर।
30. शंकराचार्य. भगवद्गीताभाष्य, लोकसंग्रह एवं ज्ञानी के कर्तव्य सम्बन्धी विवेचन।
31. भगवद्गीता, अध्याय 2, श्लोक 50 — "योगः कर्मसु कौशलम"
32. शंकराचार्य. ब्रह्मसूत्रभाष्यम, व्यवहारिक एवं पारमार्थिक सत्ता सम्बन्धी विवेचन।
33. शंकराचार्य. ब्रह्मसूत्रभाष्यम, अविद्या एवं नैतिक जीवन सम्बन्धी विवेचन।
34. तैत्तिरीयोपनिषद्, ब्रह्मानन्दवल्ली — "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।"
35. भगवद्गीता, अध्याय 6, श्लोक 29, शांकरभाष्य सहित।
36. विवेकचूडामणि, शम–दम एवं आत्मसंयम सम्बन्धी विवेचन।
37. भगवद्गीता, अध्याय 2, श्लोक 50 कृ "योगः कर्मसु कौशलम"

38. शंकराचार्य. ब्रह्मसूत्रभाष्यम, व्यवहारिक एवं पारमार्थिक सत्ता का विवेचन।

39. Indian Philosophy. नैतिक दर्शन एवं अद्वैत वेदान्त सम्बन्धी विवेचन।

40. A History of Indian Philosophy. अद्वैत वेदान्त के सामाजिक एवं दार्शनिक आयाम।

41. ईशावास्योपनिषद्, मन्त्र 1 — "ईशावास्यमिदं सर्वम"

42. भगवद्गीता, अध्याय 6, श्लोक 29 — समदृष्टि एवं सार्वभौमिक नैतिकता।

43. शंकराचार्य. ब्रह्मसूत्रभाष्यम् तथा भगवद्गीताभाष्य में अद्वैत वेदान्त की नैतिक दृष्टि सम्बन्धी समन्वित विवेचन।

Cite this Article:

डा0 श्रीप्रकाश तिवारी,"अद्वैत वेदान्त में नैतिक विमर्श: एक अध्ययन" The Research Dialogue, Open Access Peer-reviewed & Refereed Journal, Pp.126–141, Volume-05, Issue-02, July-2026, https://theresearchdialogue.com/

This is an Open cess Journal / article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution License CC BY-NC-ND 3.0) which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited. All rights reserved.

CERTIFICATE

of Publication

This Certificate is proudly presented to

डा0 श्रीप्रकाश तिवारी

For publication of Research Paper title

अद्वैत वेदान्त में नैतिक विमर्श: एक अध्ययन

Dialogue' Peer-Reviewed / Refereed Research Journal and E-ISSN: 2583-438X, Volume-05, Issue-02, Month July, Year-2026, Impact Factor (RPRI-4.73/ 6.79)

Dr. Lohans Kumar Kalyani
Editor- In-chief

Dr. Neeraj Yadav
Executive-In-Chief- Editor

Note: This E-Certificate is valid with published paper and the paper must be available online at: https://theresearchdialogue.com/

DOI : https://doi.org/10.64880/theresearchdialogue.v5i2.13